अधिकार 2

बंध-उदय-सत्त्व अधिकार

मंगलाचरण

पणमिय सिरसा णेमिं, गुणरयणविभूसणं महावीरं ।
सम्मत्तरयणणिलयं, पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छं ॥1 ॥
णमिऊण णेमिचंदं, असहायपरक्कमं महावीरं ।
बंधुदयसत्तजुत्तं, ओघादेसे थवं वोच्छं ॥87 ॥

Designed by Pngtree

णमिऊण णेमिचंदं, असहायपरक्कमं महावीरं ।
बंधुदयसत्तजुत्तं, ओघादेसे थवं वोच्छं ॥87॥

- अन्वयार्थ – (असहायपरक्कमं) जिनका पराक्रम दूसरों की सहायता से रहित है और (महावीरं) जो महावीर हैं ऐसे (णेमिचंदं) नेमिनाथ तीर्थंकर को (णमिऊण) नमस्कार करके (ओघादेसे) गुणस्थान और मार्गणा में (बंधुदयसत्तजुत्तं) बन्ध-उदय-सत्त्व से युक्त (थवं) स्तवरूप ग्रन्थ को (वोच्छं) कहूंगा ॥87॥

असहाय

जिन्हें कर्मरूपी बैरी को जीतने के लिए अन्य किसी सहायता की आवश्यकता नहीं है

पराक्रमी

अभेद रत्नत्रय की सामर्थ्यरूप पराक्रम सहित

महावीर

मनवांछित अर्थ के प्रदाता

(महा + वि + ई + र = महावीर)

www.JainKosh.org

मंगलाचरण में इष्टदेव को नमस्कार

- चन्द्रमा के समान शीतल श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर को नमस्कार करता हूँ ।

विषय की प्रतिज्ञा

- कर्मों के बन्ध, उदय, सत्त्व के प्रतिपादक स्तव को कहूँगा ।

www.JainKosh.org

सयलंगेक्कंगेक्कंगहियार सवित्थरं ससंखेवं ।
वण्णणसत्थं थयथुइ, धम्मकहा होइ णियमेण ॥88॥

- अन्वयार्थ – (सयलंगेक्कंगेक्कंगहियार) सकल अङ्ग का, एक अङ्ग का और एक अङ्ग के अधिकार का
- (सवित्थरं) विस्तारसहित या (ससंखेवं) संक्षेपसहित
- (वण्णणसत्थं) वर्णन करने वाला शास्त्र क्रम से
- (णियमेण) नियम से (थयथुइ धम्मकहा) स्तव, स्तुति, धर्मकथा कहा गया है ॥88॥

लक्षण

स्तव

समस्त अंग संबंधी अर्थ

स्तुति

एक अंग संबंधी अर्थ

धर्मकथा

एक अंग के 1 अधिकार संबंधी अर्थ

विस्तार या संक्षेप से जिसमें कथित हो

इस अधिकार में बन्ध, उदय,

सत्ता से संबंधित

सकल अर्थ को कहा जायेगा,

अतः इसे <u>स्तव</u> कहा है ।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधोत्ति चदुविहो बंधो । उक्कस्समणुक्कस्सं, जहण्णमजहण्णग त्ति पुधं ॥89॥

- अन्वयार्थ – (पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधोत्ति) प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध – इस प्रकार (बंधो) बंध (चदुविहो) चार प्रकार का है ।
- उन चारों के भी (पुधं) जुदे-जुदे (उक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णग त्ति) उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य ऐसे चार भेद हैं ॥89॥

बंध

शरीर नामकर्म के उदय से और योग के निमित्त से

कार्मण वर्गणारूप से आये हुए पुद्गल स्कंध

मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतिरूप होकर

आत्मा के प्रदेशों में परस्पर प्रवेश करते हैं

उसे बंध कहते हैं ।

बन्ध के प्रकार

प्रकृति बन्ध	स्थिति बन्ध	अनुभाग बन्ध	प्रदेश बन्ध
मूल-उत्तर प्रकृतियों का यथायोग्य जीव से संबन्ध होना	बंधी प्रकृतियों का जीव से संबन्धरूप रहने का काल	प्रकृतियों में फल देने की शक्ति	प्रकृतिरूप परिणत पुद्गल परमाणुओं का प्रमाण

www.JainKosh.org

जैसे —

आम की प्रकृति	आम की स्थिति	आम का अनुभाग	आम के प्रदेश
मीठा	5 - 7 दिन	कितना अधिक मीठा, स्वादिष्ट	सैकड़ों स्कंध या अनेकों Slices

वैसे —

मतिज्ञानावरण की प्रकृति	मतिज्ञानावरण की स्थिति	मतिज्ञानावरण का अनुभाग	मतिज्ञानावरण के प्रदेश
मतिज्ञान को आवृत्त करने की है ।	अधिकतम 30 कोड़ाकोड़ी सागर	लता, दारु, अस्थि, शैल रूप	मतिज्ञानावरणरूप परिणत कर्म-परमाणुओं की संख्या

www.JainKosh.org

उत्कृष्ट आदि प्रकार

उत्कृष्ट

उत्कृष्ट में अन्य सर्व से अधिक को ग्रहण किया जाता है ।

अनुत्कृष्ट

अनुत्कृष्ट में उत्कृष्ट को छोड़कर शेष सभी का ग्रहण होता है ।

जघन्य

जघन्य में सबसे अल्प को ग्रहण किया जाता है ।

अजघन्य

अजघन्य में जघन्य को छोड़कर शेष सबको ग्रहण किया जाता है ।

www.JainKosh.org

उदाहरण — यदि कर्म का न्यूनतम स्थितिबन्ध 10 समय है, अधिकतम बन्ध 1000 समय है और शेष 11 से 999 तक मध्यम विकल्प हैं, तो

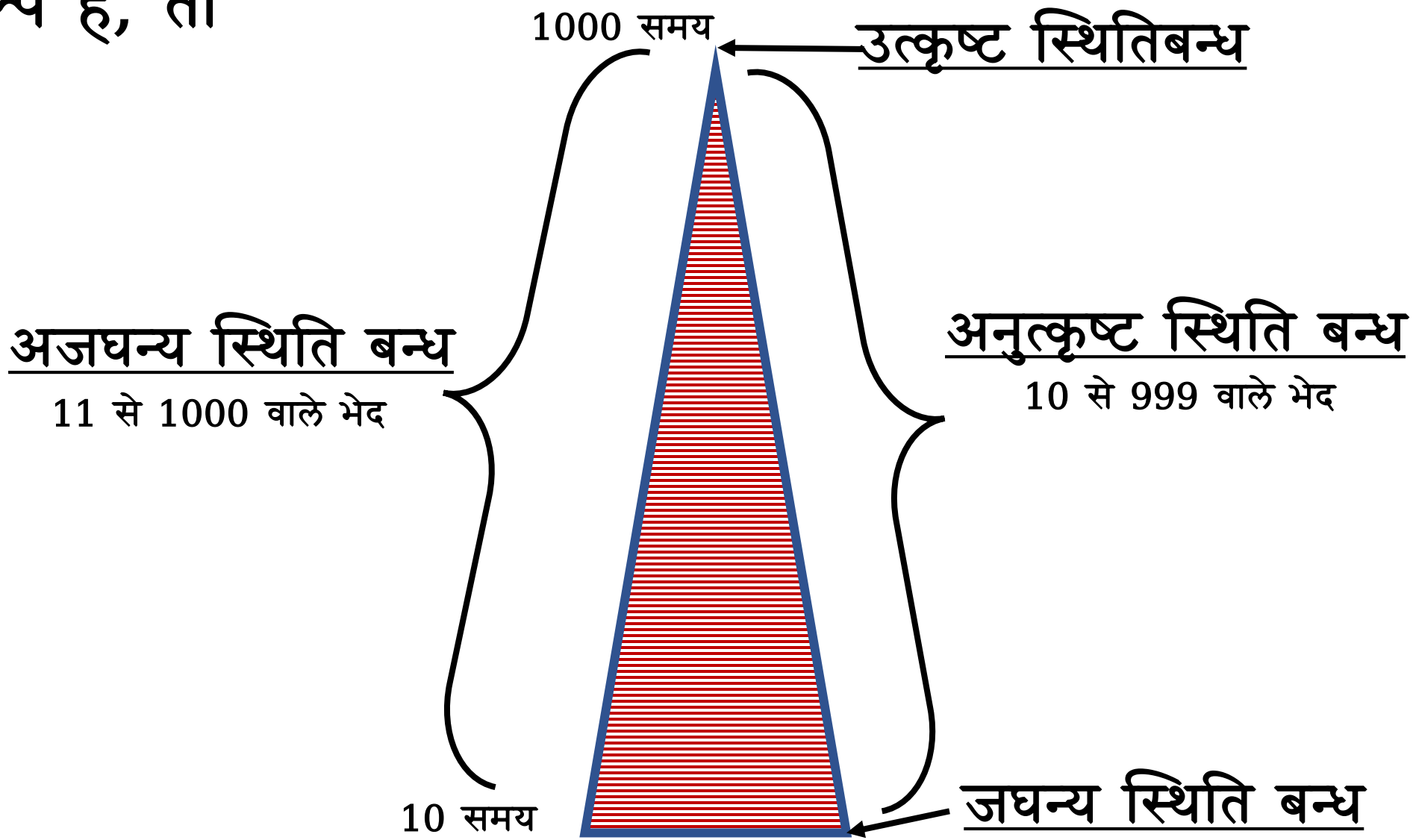

विशेष

इसी प्रकार अनुभाग बन्ध और प्रदेश बन्ध के भी चार-चार भेद कर लेने चाहिए ।

प्रकृति बन्ध के उत्कृष्ट आदि चार भेद नहीं होते हैं ।

www.JainKosh.org

सादिअणादी धुवअद्धुवो य बंधो दु जेट्ठमादीसु ।
णाणेगं जीवं पडि, ओघादेसे जहाजोग्गं ॥90॥

- अन्वयार्थ – (जेट्ठमादीसु) उत्कृष्टादि बंधों में (सादिअणादि धुवअद्धुवो य) सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव (बंधो) बंध (णाणेगं जीवं पडि) नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा (ओघादेसे) ओघ अर्थात् गुणस्थान और आदेश अर्थात् मार्गणास्थान में (जहाजोग्गं) यथायोग्य होते हैं ॥90॥

www.JainKosh.org

उदाहरण के लिए

अजघन्य स्थिति बन्ध के प्रकार

सादि

ध्रुव

अनादि

अध्रुव

www.JainKosh.org

सादि

विवक्षित बन्ध का अभाव होकर पुनः बन्ध होना ।

सादि = प्रारंभ सहित

अनादि

विवक्षित बन्ध का किसी विशिष्ट समय प्रारंभ नहीं हुआ, अनादि से चला आया है ।

ध्रुव

जिस बन्ध का कभी अभाव नहीं हुआ है ।

अध्रुव

जिस बन्ध का अभाव हो जाता है, जो बन्ध बंद हो जाता है ।

ये चारों भेद उत्कृष्ट आदि चारों भेदों में गुणस्थान, मार्गणाओं में एक जीव और नाना जीव अपेक्षा लगाना चाहिए ।

ठिदिअणुभागपदेसा, गुणपडिवण्णेसु जेसिमुक्कस्सा । तेसिमणुक्कस्सो चउव्विहोऽजहण्णेवि एमेव ॥91॥

- अन्वयार्थ – (जेसिमुक्कस्सा) जिन कर्मों का उत्कृष्ट (ठिदिअणुभागपदेसा) स्थितिबन्ध, अनुभागबंध और प्रदेशबन्ध (गुणपडिवण्णेसु) गुणप्रतिपन्न अर्थात् ऊपर-ऊपर के गुणस्थानों में होता है (तेसिमणुक्कस्सो) उन कर्मों का अनुत्कृष्ट स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्ध (चउव्विहो) चार प्रकार का अर्थात् सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुव भेद से चार प्रकार का होता है तथा (अजहण्णेवि) अजघन्य में भी (एमेव) इसी प्रकार चार भेद होते हैं ॥91॥

www.JainKosh.org

नियम

उत्कृष्ट और जघन्य बन्ध सादि और अध्रुव ही होते हैं क्योंकि किसी विशिष्ट समय ही प्रारंभ होते हैं और कुछ समय होकर समाप्त हो जाते हैं ।

जिन प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति, अनुभाग, प्रदेश बन्ध विशिष्ट गुण सहित मिथ्यादृष्टि या सासादन आदि गुणस्थानों में पाया जाता है, उन्हीं का अनुत्कृष्ट बन्ध चार प्रकार का होता है ।

शेष प्रकृतियों के अनुत्कृष्ट का मात्र सादि और अध्रुव बन्ध होता है ।

नियम

इसी प्रकार जिन प्रकृतियों का जघन्य स्थिति, अनुभाग, प्रदेश बन्ध विशिष्ट गुणसहित मिथ्यादृष्टि या सासादन आदि गुणस्थान में होता है, उन्हीं प्रकृतियों का अजघन्य बन्ध सादि आदि 4 प्रकार का होता है ।

शेष प्रकृतियों का अजघन्य बन्ध सादि और अध्रुव ही होता है ।

इसका विशेष अर्थ एक-एक बन्ध के साथ आगे देखेंगे । इसलिए यहाँ अधिक नहीं कहा है ।

www.JainKosh.org

सम्मेव तित्थबंधो, आहारदुगं पमादरहिदेसु ।
मिस्सूणे आउस्स य, मिच्छादिसु सेसबंधो दु ॥92॥

- अन्वयार्थ – (तित्थबंधो) तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध (सम्मेव) सम्यक्त्व अवस्था में ही होता है ।
- (आहारदुगं) आहारकद्विक का बन्ध (पमादरहिदेसु) अप्रमत्त गुणस्थानों में होता है ।
- (आउस्स) आयु कर्म का बन्ध (मिस्सूणे) मिश्र गुणस्थान के बिना अन्य गुणस्थानों में अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थान से अप्रमत्त गुणस्थान तक होता है ।
- (सेसबंधो दु) शेष प्रकृतियों का बन्ध (मिच्छादिसु) मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में (अपनी-अपनी बन्ध-व्युच्छित्तिपर्यन्त) जानना ॥92॥

www.JainKosh.org

प्रकृति बन्ध के नियम

1) सम्यग्दृष्टि को ही तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है । वह भी चतुर्थ गुणस्थान से आठवें गुणस्थान के छठे भाग तक ।

2) आहारक-2 का बन्ध अप्रमत्तसंयत के होता है । वह भी 7वें से 8वें के छठे भाग तक ।

3) आयुकर्म का बन्ध मिश्र गुणस्थान में नहीं होता । शेष मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से अप्रमत्तसंयत तक होता है ।

4) आयुकर्म का बन्ध निर्वृत्ति-अपर्याप्त दशा में नहीं होता ।

5) शेष प्रकृतियों का बन्ध मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में बन्ध-व्युच्छित्ति पर्यंत होता है ।

पढमुवसमिये सम्मे, सेसतिये अविरदादिचत्तारि । तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते ॥93॥

- अन्वयार्थ – (पढमुवसमिये सम्मे) प्रथमोपशम सम्यक्त्व में तथा (सेसतिये) शेष तीन द्वितीयोपशम सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व में (अविरदादि-चत्तारि) असंयत गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तपर्यन्त चार गुणस्थानवर्ती (णरा) मनुष्य ही (केवलिदुगंते) केवली अथवा श्रुतकेवली के पादमूल में (तित्थयरबंधपारंभया) तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ करते हैं ॥93॥

www.JainKosh.org

तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध के प्रारंभ होने के नियम

1) सम्यग्दृष्टि ही	• प्रथमोपशम, द्वितीयोपशम, क्षायोपशमिक अथवा क्षायिक
2) चतुर्थ गुणस्थान से अप्रमत्तसंयत	• इन्हीं चार में से किसी गुणस्थान में प्रारंभ होता है, अन्य में नहीं ।
3) मनुष्य	• शेष तीन गति के जीव तीर्थंकर प्रकृति बांधना प्रारंभ नहीं कर सकते । क्योंकि अन्य गतियों में विशिष्ट विचार आदि सामग्री का अभाव है ।
4) केवलिद्विक के निकट	• क्योंकि अन्यत्र ऐसी विशुद्धता नहीं होती ।

- तिर्यंचगति में तो तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किसी प्रकार भी संभव नहीं है।
- शेष 3 गतियों में प्रारंभ हो जाने के बाद बन्ध चलता रहता है ।

बन्ध-व्युच्छित्ति

प्रकृति बन्ध के संबन्ध में तीन चीजों का विचार करना है

बन्ध

अबन्ध

www.JainKosh.org

बन्ध-व्युच्छित्ति

जिस गुणस्थान में जितनी प्रकृतियों की व्युच्छित्ति कही है, उन प्रकृतियों का उस गुणस्थान के अंत समय तक बन्ध संभव है, उसके ऊपर बन्ध का अभाव है । इसे बन्ध-व्युच्छित्ति कहते हैं ।

जैसे मिथ्यात्व की बन्ध-व्युच्छित्ति प्रथम गुणस्थान में कही अर्थात् प्रथम गुणस्थान में मिथ्यात्व का बन्ध है । परंतु सासादन आदि ऊपर के किसी गुणस्थान में उसका बन्ध नहीं है ।

www.JainKosh.org

व्युच्छित्ति

उत्पाद-अनुच्छेद	• द्रव्यार्थिक नय अपेक्षा । जहाँ अस्तित्व है, वहीं विनाश कहना ।
अनुत्पाद-अनुच्छेद	• पर्यायार्थिक नय अपेक्षा । जहाँ जिसका सत्त्व नहीं है, वहीं उसका अभाव कहना ।

* व्युच्छित्ति द्रव्यार्थिक नय अपेक्षा कही है ।
* अबन्ध पर्यायार्थिक नय अपेक्षा कहा है ।

बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ

जिस गुणस्थान में जिन प्रकृतियों का बंध संभव है, वे उस गुणस्थान में बंध-योग्य कहलाती हैं ।

जैसे मिथ्यात्व गुणस्थान में उच्च गोत्र का बंध संभव है । अतः यह मिथ्यात्व गुणस्थान में बंध-योग्य प्रकृतियों में गिनी जायेगी ।

जहाँ जितनी बंध-प्रकृतियाँ हैं, वे नाना जीवों की नाना काल की अपेक्षा हैं । सभी प्रकृतियों का बंध वहाँ युगपत् एक जीव को हो, ऐसा जरुरी नहीं है ।

बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ

पूर्व के गुणस्थान की बन्ध-व्युच्छिन्न प्रकृतियों को कुल बन्ध प्रकृतियों में से घटायें ।

विवक्षित गुणस्थान में विशिष्ट नियम के कारण जिनका बन्ध संभव नहीं, उन्हें घटायें ।

शेष रही प्रकृतियाँ बंध-योग्य हैं ।

www.JainKosh.org

अबन्ध प्रकृतियाँ

जिस गुणस्थान में जो प्रकृतियाँ बंधती ही नहीं हैं, वे उस स्थान में अबन्ध प्रकृतियाँ कहलाती हैं ।
जैसे तीर्थंकर प्रकृति मिथ्यात्व गुणस्थान में अबंधरूप है ।

दो प्रकार की अबंध प्रकृतियाँ होती हैं —

1) पूर्व गुणस्थानों में व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ

2) गुणस्थान के नियम अनुसार जिसका वहाँ बंध संभव नहीं है । जैसे मिश्र गुणस्थान में आयु का बंध संभव नहीं है ।

www.JainKosh.org

अबन्ध प्रकृतियाँ

जिस गुणस्थान में जितनी बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ हैं, कुल बन्ध प्रकृतियों में से उसे घटाने पर अबन्ध प्रकृतियाँ होती हैं ।

अबन्ध प्रकृतियाँ =

कुल बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ – विवक्षित गुणस्थान में बन्ध-योग्य

www.JainKosh.org

प्रकृतियों को संक्षेप में समझने के लिए संकेत

नरक-द्विक	नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी
तिर्यग्द्विक	तिर्यंच गति, तिर्यंच गत्यानुपूर्वी
मनुष्य-द्विक	मनुष्य गति, मनुष्य गत्यानुपूर्वी
देव-द्विक	देव गति, देव गत्यानुपूर्वी
औदारिक-द्विक	औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग
वैक्रियिक-द्विक	वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग
आहारक-द्विक	आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग
तैजस-द्विक	तैजस शरीर, कार्मण शरीर
हास्य-युगल	हास्य, रति
शोक-युगल	शोक, अरति
भय-युगल	भय, जुगुप्सा
अगुरुलघु-द्विक	अगुरुलघु, उपघात

प्रकृतियों को संक्षेप में समझने के लिए संकेत

सूक्ष्म-त्रय	सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण
दुर्भग-त्रय	दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय
स्त्यान-त्रिक	स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला
विकल-त्रय	द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय जाति
नारक-चतुष्क	नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग
देव-चतुष्क	देव गति, देव गत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग
शतार-चतुष्क	तिर्यंच गति, तिर्यंच गत्यानुपूर्वी, तिर्यंच आयु, उद्योत
त्रस-चतुष्क	त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर
स्थावर-चतुष्क	स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण
वर्ण-चतुष्क	वर्ण, गंध, रस, स्पर्श
वैक्रियिक-षट्क	देव गति, देव गत्यानुपूर्वी, नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग

सोलस पणवीस णभं, दस चउ छक्केक्क बंधवोच्छिण्णा ।
दुग तीस चदुरपुव्वे, पण सोलस जोगिणो एक्को ॥94॥

- अन्वयार्थ – मिथ्यात्व से अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त क्रम से (सोलस पणवीस णभं दस चउ छक्केक्क बंधवोच्छिण्णा) सोलह, पच्चीस, शून्य, दस, चार, छह और एक प्रकृति बंध से व्युच्छिन्न हो जाती हैं ।
- (अपुव्वे) अपूर्वकरण गुणस्थान में (दुग तीस चदुर्) दो, तीस और चार प्रकृति बंध से व्युच्छिन्न होती हैं ।
- अनिवृत्तिकरण में (पण) पाँच, दसवें में (सोलस) सोलह और (जोगिणो एक्को) सयोगकेवली के एक प्रकृति की बंध-व्युच्छित्ति होती है ॥94॥

www.JainKosh.org

गुणस्थानों में बन्ध-व्युच्छित्ति

गुणस्थान	बंध-व्युच्छित्ति संख्या
मिथ्यादृष्टि	16
सासादन	25
मिश्र	0
अविरत सम्यक्त्व	10
देशविरत	4
प्रमत्त संयम	6
अप्रमत्त संयत	1
अपूर्वकरण	2+30+4=36
अनिवृत्तिकरण	5
सूक्ष्म सांपराय	16
उपशान्त मोह	0
क्षीणमोह	0
सयोग केवली	1
अयोग केवली	–
कुल	*120*

मिच्छत्तहुंडसंढाऽसंपत्तेयक्खथावरादावं ।
सुहुमतियं वियलिंदिय, णिरयदुणिरयाउगं मिच्छे ॥95॥

- अन्वयार्थ – (मिच्छत्तहुंडसंढासंपत्तेयक्खथावरादावं) मिथ्यात्व, हुंडक संस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्त-सृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आताप (सुहुमतियं) सूक्ष्मत्रिक अर्थात् सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण (वियलिंदी) विकलेन्द्रिय अर्थात् द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय (णिरयदुणिरयाउगं) नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु — ये 16 प्रकृतियाँ (मिच्छे) मिथ्यात्व गुणस्थान में व्युच्छिन्न होती हैं ॥95॥

www.JainKosh.org

मिथ्यात्व में व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ

मिथ्यात्व	हुंडक संस्थान	नपुंसक वेद	असंप्राप्ता-सृपाटिका संहनन
एकेन्द्रिय-3 (एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप)	सूक्ष्म-3 (सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण)	विकलेन्द्रिय-3 (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति)	
नरक-द्विक (नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी)	नरकायु		

कुल 16 (चार इक्के, चार तिक्के) = 16

इन प्रकृतियों के बन्ध का मूल कारण मिथ्यात्व है । अत: कारण के अभाव में कार्य का अभाव हुआ ।

इन प्रकृतियों का बन्ध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान तक ही होता है, आगे के गुणस्थान में नियम से इनका बन्ध नहीं होता ।

विशेष

सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्व का उदय नहीं, अतः बन्ध नहीं ।

सम्यग्दृष्टि मरण कर एकेंद्रिय, विकलेन्द्रिय, अपर्याप्त, हीन संहनन वाला नहीं होता, अतः बन्ध नहीं ।

सम्यग्दृष्टि मरण कर हीन संस्थानवाला नहीं होता, अतः बन्ध नहीं ।*

सम्यग्दृष्टि मरण कर नरक गति में नहीं जाता, अतः बन्ध नहीं ।*

सम्यग्दृष्टि मरण कर नपुंसकवेदी नहीं होता, अतः बन्ध नहीं । *

* जिन्होंने नरक या तिर्यंच आयु सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व बाँध ली है, वे मरणकर नरक आदि में जाते हैं ।

बिदियगुणे अणथीणति-दुभगतिसंठाणसंहदिचउक्कं । दुग्गमणित्थीणीचं, तिरियदुगुज्जोवतिरियाऊ ॥96॥

- अन्वयार्थ – (बिदियगुणे) द्वितीय गुणस्थान में (अण) अनंतानुबंधी 4 कषाय, (थीणति) स्त्यानत्रिक अर्थात् स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला (दुभगति) दुर्भगत्रिक अर्थात् दुर्भग, दुस्वर, अनादेय (संठाणसंहदिचउक्कं) बीच के 4 संस्थान, 4 संहनन (दुग्गमण) अप्रशस्त विहायोगति (इत्थी) स्त्रीवेद (णीचं) नीच गोत्र (तिरियदुग) तिर्यंचद्विक अर्थात् तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी (उज्जोव) उद्योत और (तिरियाऊ) तिर्यंचायु – ये 25 प्रकृतियाँ बंध से व्युच्छिन्न होती हैं ॥96॥

www.JainKosh.org

सासादन में बन्ध-व्युच्छित्ति

अनन्तानुबंधी - 4			4
स्त्यान-त्रिक	3		
स्त्री वेद	1		4
दुर्भग-3 (दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय)		3	
अप्रशस्त विहायोगति		1	4
बीच के 4 संहनन			4
बीच के 4 संस्थान			4
तिर्यंचगति - 2	2		
तिर्यंचायु	1		
उद्योत	1		4
नीच गोत्र			1

6 चौके, 1 नीच गोत्र = 25

ये प्रकृतियाँ मिथ्यात्व के उदय के साथ भी बन्धती हैं तथा मिथ्यात्व के बिना मात्र अनन्तानुबंधी से भी बन्धती हैं । अतः इनके बन्ध की हेतु अनंतानुबंधी कषायें हैं ।

तीव्रतम पाप प्रकृतियाँ मिथ्यात्व गुणस्थान में व्युच्छिन्न हुई । तीव्रतर पाप प्रकृतियाँ सासादन गुणस्थान में व्युच्छिन्न हुई ।

* मिश्र गुणस्थान में कोई बन्ध-व्युच्छित्ति नहीं है ।

www.JainKosh.org

विशेष

सम्यग्दृष्टि के अनंतानुबंधी का उदय नहीं, अतः बन्ध नहीं ।

सम्यग्दृष्टि मरण कर हीन संस्थान, दुर्भग आदि वाला नहीं होता, अतः बन्ध नहीं ।*

सम्यग्दृष्टि मरण कर हीन संहनन वाला नहीं होता, अतः बन्ध नहीं ।*

सम्यग्दृष्टि मरण कर तिर्यंच गति में नहीं जाता, अतः बन्ध नहीं ।*

सम्यग्दृष्टि मरण कर नीच गोत्री नहीं होता, अतः बन्ध नहीं ।*

सम्यग्दृष्टि मरण कर स्त्रीवेदी नहीं होता, अतः बन्ध नहीं ।

* जिन्होंने नरक या तिर्यंच आयु सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व बाँध ली है, वे मरणकर नरक आदि में जाते हैं ।

अयदे विदियकसाया, वज्जं ओरालमणुदुमणुवाऊ । देसे तदियकसाया, णियमेणिह बंधवोच्छिण्णा ॥97॥

- अन्वयार्थ - (अयदे) असंयत गुणस्थान में (बिदियकसाया) द्वितीय अप्रत्याख्यानावरण 4 कषाय, (वज्जं) वज्रऋषभनाराच संहनन, (ओरालमणुदुमणुवाऊ) औदारिकद्विक, मनुष्यद्विक, (औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी) और मनुष्यायु – ये दस प्रकृतियाँ बंध से व्युच्छिन्न होती हैं ।
- (देसे) देशसंयत गुणस्थान में (तदियकसाया) तृतीय कषाय अर्थात् प्रत्याख्यानावरण कषाय (णियमेण) नियम से (इह) यहाँ पर (बंधवोच्छिण्णा) बंध से व्युच्छिन्न होती है ॥97॥

www.JainKosh.org

असंयत सम्यग्दृष्टि में बन्ध-व्युच्छित्ति

व्रती जीव मरण कर मनुष्यों में नहीं उत्पन्न होते, अत: मनुष्य संबंधी सभी प्रकृतियों की बन्ध-व्युच्छित्ति होती है ।

व्रती के अप्रत्याख्यान कषाय का उदय नहीं पाया जाता, अत: अप्रत्याख्यान की व्युच्छित्ति होती है ।

ये 10 प्रकृतियाँ अप्रत्याख्यान कषाय के निमित्त से बन्धती हैं ।

अप्रत्याख्यान कषाय 4

वज्रऋषभनाराच संहनन

औदारिक-द्विक (शरीर, अंगोपांग)

मनुष्य-द्विक (गति, आनुपूर्वी)

मनुष्य आयु

www.JainKosh.org

देशसंयत में बन्ध-व्युच्छित्ति

प्रत्याख्यानावरण-4 कषाय

प्रमत्तसंयत जीव को प्रत्याख्यान कषाय का उदय नहीं पाया जाता है, अतः प्रत्याख्यान कषाय की बन्ध-व्युच्छित्ति पाँचवें गुणस्थान में होती है ।

प्रत्याख्यानावरण-4 — ये 4 प्रकृतियाँ अपने उदय के कारण बन्धती हैं ।

छट्ठे अथिरं असुहं, असादमजसं च अरदिसोगं च ।
अपमत्ते देवाऊ, णिट्ठवणं चेव अत्थित्ति ॥98॥

- अन्वयार्थ – (छट्ठे) छठे गुणस्थान में (अथिरं असुहं असादमजसं च अरदिसोगं च) अस्थिर, अशुभ, असाता वेदनीय, अयश, अरति और शोक – ये 6 प्रकृतियाँ व्युच्छिन्न होती हैं ।
- (अपमत्ते देवाऊ) अप्रमत्त गुणस्थान में देवायु की बंध-व्युच्छित्ति होती है ।
- (णिट्ठवणं चेव अत्थित्ति) सातवें गुणस्थान में आयु के बन्ध का निष्ठापन ही होता है अर्थात् वहाँ आयुबन्ध का प्रारंभ नहीं होता ॥98॥

प्रमत्तसंयत में बन्ध-व्युच्छित्ति

अरति, शोक	अस्थिर, अशुभ, अयश	असाता वेदनीय

ये 6 प्रकृतियाँ प्रमाद के निमित्त से बन्धती हैं, अप्रमाद होने पर नहीं बन्धती ।

अप्रमत्तसंयत अघातिया की (उपघात और अप्रशस्त वर्ण-4 को छोड़कर) पाप प्रकृतियों को नहीं बांधता, अतः अस्थिर, अशुभ, अयश, असाता वेदनीय की बन्ध-व्युच्छित्ति हुई ।

अप्रशस्ततर अरति, शोक कषाय की व्युच्छित्ति होती है क्योंकि प्रमाद से इनका बन्ध होता है ।

www.jainkosh.org

अप्रमत्तसंयत में बन्ध-व्युच्छित्ति

अत्यन्त विशुद्ध परिणामों में आयु का बन्ध नहीं होता, अतः देवायु की बन्ध-व्युच्छित्ति अप्रमत्तसंयत में होती है ।

यह व्युच्छित्ति भी अप्रमत्त के स्वस्थान में ही हो जाती है । सातिशय अप्रमत्त में देवायु का बन्ध संभव नहीं ।

www.JainKosh.org

मरणूणम्मि णियट्टी-पढमे णिद्दा तहेव पयला य ।
छट्ठे भागे तित्थं, णिमिणं सग्गमणपंचिंदी ॥99॥
तेजदुहारदुसमचउ-सुरवण्णागुरुचउक्कतसणवयं ।
चरिमे हस्सं च रदी, भयं जुगुच्छा य वोच्छिण्णा ॥100॥

- अन्वयार्थ – (मरणूणम्मि णियट्टीपढमे) अपूर्वकरण के मरणरहित प्रथम भाग में (णिद्दा तहेव पयला य) निद्रा और प्रचला की बंध-व्युच्छित्ति होती है ।
- (छट्ठे भागे) छठे भाग में (तित्थं) तीर्थंकर (णिमिणं) निर्माण (सग्गमणपंचिंदी) प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रिय (तेजदुहारदु-समचउसुरवण्णगुरुगचउक्क-तसणवयं) तैजस, कार्मण, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, समचतुरस्र संस्थान, देवचतुष्क अर्थात् देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क अर्थात् अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रसनवक अर्थात् त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय – ये तीस प्रकृतियाँ बंध से व्युच्छिन्न होती हैं ।
- (चरमे) अंतिम भाग में (हस्सं रदी भयं च जुगुच्छा) हास्य, रति, भय और जुगुप्सा – ये 4 प्रकृतियाँ (बंधवोच्छिण्णा) बंध से व्युच्छिन्न होती हैं ॥99-100॥

www.JainKosh.org

अपूर्वकरण में बन्ध-व्युच्छित्ति

इस गुणस्थान के समय के सात विभाग किए जाते हैं ।

इसके पहले, छठे और अंतिम भाग में क्रमशः 2, 30, 4 प्रकृतियाँ व्युच्छिन्न होती हैं ।

कुल 36 प्रकृतियों की बन्ध-व्युच्छित्ति होती है ।

www.JainKosh.org

अपूर्वकरण में बन्ध-व्युच्छित्ति

प्रथम भाग में व्युच्छिन्न

2 निद्राएँ (निद्रा, प्रचला)

छठे भाग में व्युच्छिन्न नामकर्म की पुण्य प्रकृतियाँ

गति — देवगति	1
जाति — पंचेन्द्रिय	1
शरीर — वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण	4
अंगोपांग — वैक्रियिक, आहारक	2
संस्थान — समचतुरस्र	1
आनुपूर्वी — देव	1
वर्णादि	4
विहायोगति — प्रशस्त	1
अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, निर्माण, तीर्थंकर	5
जोड़े वाली प्रकृतियाँ (यश छोड़कर, 10 – 1)	9
नामकर्म की 1 पाप प्रकृति — उपघात	1

सातवें भाग (अपूर्वकरण का अंतिम समय) में व्युच्छिन्न

4 नोकषाय – हास्य, रति, भय, जुगुप्सा

कुल व्युच्छित्ति 36

30 प्रकृतियाँ याद रखने के लिए

तैजस–2	2
आहारक–2	2
सुर–चतुष्क	4
वर्ण–चतुष्क	4
अगुरु–चतुष्क	4
त्रस–9	9
शेष 5 —	5
पंचेन्द्रिय जाति	
समचतुरस्र संस्थान	
प्रशस्त विहायोगति	
निर्माण	
तीर्थंकर	
कुल	30

ww

पुरिसं चदुसंजलणं, कमेण अणियट्टिपंचभागेसु ।
पढमं विग्घं दंसण-चउ जसउच्चं च सुहुमंते ॥101॥

- अन्वयार्थ – (अणियट्टि पंचभागेसु) अनिवृत्तिकरण के पाँच भागों में (कमेण) क्रम से (पुरिसं) पुरुषवेद और (चदु संजलणं) संज्वलन चार कषाय बंध से व्युच्छिन्न होती हैं ।
- (सुहुमंते) सूक्ष्मसांपराय के अंत में (पढमं) प्रथम अर्थात् पाँच ज्ञानावरण, (विग्घं) पाँच अंतराय, (दंसणचउ) चार दर्शनावरण, (जस) यशस्कीर्ति (च) और (उच्चं) उच्च गोत्र – ये सोलह प्रकृतियाँ व्युच्छिन्न होती हैं ॥101॥

www.JainKosh.org

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में बन्ध-व्युच्छित्ति

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के काल के 5 विभाग किये जाते हैं, जिनमें प्रत्येक भाग में 1-1 प्रकृति की बन्ध-व्युच्छित्ति होती है ।

प्रथम भाग में	• पुरुषवेद
द्वितीय भाग में	• संज्वलन क्रोध
तृतीय भाग में	• संज्वलन मान
चतुर्थ भाग में	• संज्वलन माया
पांचवें भाग में	• संज्वलन लोभ
कुल	• 5

ww

सूक्ष्म-सांपराय में बन्ध-व्युच्छित्ति

वीतरागी होने पर किसी कर्म का बन्ध नहीं होता ।

योग होने के कारण मात्र साता वेदनीय का आस्रव होता है ।

अत: साता वेदनीय को छोड़कर जितने कर्म शेष हैं, उन सभी की व्युच्छित्ति यहाँ होती है ।

ज्ञानावरण	• 5
दर्शनावरण	• 4
अन्तराय	• 5
नामकर्म (यश)	• 1
गोत्र कर्म (उच्च)	• 1
कुल	• 16

www.JainKosh.org

उवंसतखीणमोहे, जोगिम्हि य समइयट्ठिदी सादं ।
णायव्वो पयडीणं, बंधस्संतो अणंतो य ॥102॥

- अन्वयार्थ - (उवसंतखीणमोहे) उपशांतमोह, क्षीणमोह (य) और (जोगिम्मि) सयोग-केवली में (समइयट्ठिदी) एक समय की स्थिति वाला (सादं) सातावेदनीय बंधता है ।
- इस प्रकार (पयडीणं बंधस्संतो) प्रकृतियों के बन्ध का अन्त अर्थात् बन्ध व्युच्छित्ति, (अणंतो) बन्ध का अनन्त अर्थात् बन्ध का सद्भाव तथा (य) 'च' शब्द से अबन्ध (णायव्वो) जानना चाहिये ॥102॥

www.JainKosh.org

उपशांत मोह, क्षीण मोह, सयोगकेवली गुणस्थानों में योग पाया जाता है, कषाय नहीं । अतः एक समय मात्र स्थिति वाला साता वेदनीय का आस्रव होता है ।

अयोगकेवली में योग का भी अभाव हो जाता है । अतः सयोगकेवली गुणस्थान में साता वेदनीय की बन्ध-व्युच्छित्ति हो जाती है ।

सत्तरसेक्कग्गसयं, चउसत्तत्तरि सगट्ठि तेवट्ठी ।
बंधा णवट्ठवण्णा, दुवीस सत्तारसेक्कोघे ॥103॥

- अन्वयार्थ - मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में क्रम से (सत्तरसेक्कग्गसयं) 117, 101 (चउसत्तत्तरि) 74, 77 (सगट्ठि) 67 (तेवट्ठि) 63 (णवट्ठवण्णा) 59, 58 (दुवीस) 22 (सत्तारस) 17 (एक्कोघे) 1, 1, 1 प्रकृतियाँ बन्धरूप हैं ॥103॥

तिय उणवीसं छत्तिय-तालं तेवण्ण सत्तवण्णं च ।
इगिदुगसट्ठी बिरहिय, तियसय उणवीससय त्ति वीससयं ॥104॥

- अन्वयार्थ - मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में क्रम से (तिय) तीन, (उणवीसं) उन्नीस, (छत्तालं) छियालीस, (तियतालं) तेतालीस, (तेवण्ण) तिरपन, (सत्तवण्णं) सत्तावन, (इगिदुगसट्ठी) इकसठ, बासठ (विरहिय सय) दोरहित सौ अर्थात् अठानवे (तियसय उणवीससय) एक सौ तीन, एक सौ उन्नीस (वीससयं) एक सौ बीस अबन्धरूप प्रकृतियाँ हैं ॥104॥

	व्युच्छित्ति	बंध	अबंध
मिथ्यात्व	16	117	तीर्थंकर, आहारक-2
सासादन	25	101	16 व्युच्छिन्न, 3 पूर्वोक्त
मिश्र	0	74	41 व्युच्छिन्न, 3 पूर्वोक्त, 2 आयु – मनुष्य, देव
अविरत सम्यक्त	10	77	41 व्युच्छिन्न, 2 आहारक
देशसंयत	4	67	51 व्युच्छिन्न, 2 आहारक

www.JainKosh.org

	व्युच्छित्ति	बंध	अबंध
प्रमत्त संयत	6	63	55 व्युच्छिन्न, 2 आहारक
अप्रमत्त संयत	1	59	61 व्युच्छिन्न
अपूर्वकरण	36	58	62 व्युच्छिन्न
अनिवृत्तिकरण	5	22	98 व्युच्छिन्न
सूक्ष्मसाम्पराय	16	17	103 व्युच्छिन्न

www.jainkosh.org

	व्युच्छित्ति	बंध	अबंध
उपशांत मोह	0	1	119 व्युच्छिन्न
क्षीण मोह	0	1	119 व्युच्छिन्न
सयोगकेवली	1	1	119 व्युच्छिन्न
अयोगकेवली	0	0	120 व्युच्छिन्न

www.JainKosh.org

गुणस्थानों में व्युच्छित्ति, बन्ध, अबन्ध

गुणस्थान	व्युच्छित्ति	बंध	अबंध
मिथ्यात्व	16	117	तीर्थंकर, आहारक-2
सासादन	25	101	16 व्युच्छिन्न, 3 पूर्वोक्त
मिश्र	0	74	41 व्युच्छिन्न, 3 पूर्वोक्त, 2 आयु – मनुष्य, देव
अविरत सम्यक्त्व	10	77	41 व्युच्छिन्न, 2 आहारक
देशसंयत	4	67	51 व्युच्छिन्न, 2 आहारक
प्रमत्त संयत	6	63	55 व्युच्छिन्न, 2 आहारक
अप्रमत्त संयत	1	59	61 व्युच्छिन्न
अपूर्वकरण	36	58	62 व्युच्छिन्न
अनिवृत्तिकरण	5	22	98 व्युच्छिन्न
सूक्ष्मसाम्पराय	16	17	103 व्युच्छिन्न
उपशांत मोह	0	1	119 व्युच्छिन्न
क्षीण मोह	0	1	119 व्युच्छिन्न
सयोगकेवली	1	1	119 व्युच्छिन्न
अयोगकेवली	0	0	120 व्युच्छिन्न